इकाई – 14 पंचसन्धियाँ एवं उसके अंग

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्‌देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 पंचसन्धियाँ

14.2.1 मुख सन्धि एवं उसके अंग

14.2.2 प्रतिमुख सन्धि एवं उसके अंग

14.2.3 गर्भ सन्धि एवं उसके अंग

14.2.4 विमर्श सन्धि एवं उसके अंग

14.2.5 निर्वहण सन्धि एवं उसके अंग

14.3 सारांश

14.4 कुछ उपयोगी पुस्तकें

14.5 अभ्यास प्रश्न

14.0 उद्‌देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप–

- नाटक में पंचसन्धियों की संकल्पना को स्पष्ट कर सकेंगे।
- पंचसन्धियों के 64 अंगों का विस्तृत अध्ययन कर सकेंगे।
- पंचसन्धियों के महत्त्व को समझ सकेंगे।
- नये पदों के प्रकृति-प्रत्ययों को समझ सकेंगे।

14.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आप नाटक में प्रयोग होने वाली पंचसन्धियों के घटक तत्त्वों अर्थात् पाँच अर्थोपक्षेपकों, पाँच अर्थप्रकृतियों एवं पाँच कार्यावस्थाओं के बारे में जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। नाटक के लक्षण में आपने पढ़ा कि **नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात् पञ्चसन्धिसमन्वितम्।** अर्थात् नाटक ख्यातवृत्त वाला होना चाहिए तथा पाँच सन्धियों से समन्वित होना चाहिए। इन पाँच सन्धियों को पंचसन्धि अथवा नाट्यसन्धि के नाम से भी जाना जाता है। मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श तथा निर्वहण ये पाँच नाट्यसन्धियाँ कहलाती हैं। ये पाँच सन्धियाँ क्रमशः पाँच अर्थप्रकृतियों एवं पाँच अवस्थाओं के योग से बनती हैं। प्रस्तुत इकाई में आप नाट्यसन्धियों का विस्तृत परिचय प्राप्त करेंगे।

14.2 पंचसन्धियाँ

पाँच अर्थप्रकृतियों एवं पाँच अवस्थाओं के योग से क्रमशः पाँच सन्धियाँ बनती हैं।

यथासंख्यमवस्थाभिराभिर्योगात्तु पञ्चभिः।

पञ्चधैवेतिवृत्तस्य भागाः स्युः पञ्च सन्धयः।।74।।

इन्ही पाँच अवस्थाओं के सम्बन्ध से इतिवृत्त (कथावस्तु) के पाँच विभाग हो जाते हैं और इस प्रकार यथासंख्य पाँच सन्धियाँ बनती हैं। उन विभागों का नाम सन्धि नहीं है अपितु उन्हें आन्तरिक रूप से जोड़ने वाले सम्बन्ध का नाम सन्धि है। जैसे कि सन्धि का स्वरूप इस प्रकार बतलाया गया है–

तल्लक्षणमाह–

अन्तरैकार्थसम्बन्धः सन्धिरेकान्वये सति।

अर्थात् एक प्रयोजन से अन्वित होने वाले कथाँशों के अवान्तर सम्बन्ध को सन्धि कहते हैं।

मुखं प्रतिमुखं गर्भो विमर्श उपसंहृतिः।।75।।

इति पञ्चाऽस्य भेदाः स्युः क्रमाल्लक्षणमुच्यते।

सन्धि के पाँच भेद हैं– मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और उपसंहृति (निर्वहण) । पाँच कार्यावस्थायें जब पाँच अर्थप्रकृतियों के साथ मिलती हैं तो क्रमशः मुख, प्रतिमुख आदि पाँच सन्धियाँ बनती हैं।

आरम्भ कार्यावस्था तथा बीज अर्थप्रकृति से युक्त इतिवृत्त भाग में मुख नामक सन्धि होती है। यत्न कार्यावस्था तथा बिन्दु अर्थप्रकृति से युक्त इतिवृत्त भाग में प्रतिमुख नामक सन्धि होती है। प्राप्त्याशा कार्यावस्था तथा पताका अर्थप्रकृति से युक्त इतिवृत्त भाग में गर्भ नामक सन्धि होती है। नियताप्ति कार्यावस्था तथा प्रकरी अर्थप्रकृति से युक्त इतिवृत्त भाग में विमर्श नामक सन्धि होती है तथा फलागम कार्यावस्था तथा कार्य अर्थप्रकृति से युक्त इतिवृत्त भाग में निर्वहण नामक सन्धि होती है। उपसंहृति का ही दूसरा नाम निर्वहण है। प्रत्येक सन्धि का अपना-अपना स्वरूप तथा अपने अपने अंग होते हैं। इन सबका वर्णन इस प्रकार है –

14.2.1 मुख सन्धि एवं उसके अंग

यत्र बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरससम्भवा।।76।।

प्रारम्भेण समायुक्ता तन्मुखं परिकीर्तितम्।

यथा– रत्नावल्यां प्रथमेऽङ्के

जहाँ (जिस सन्धि में) अनेक अर्थों एवं अनेक रसों के सूचक बीज की उत्पत्ति प्रारम्भ नामक अवस्था से युक्त होती है, उसे मुख सन्धि कहते हैं। मुख्य होने के कारण इस सन्धि का नाम

मुख रखा गया है। बीज नामक अर्थप्रकृति की उक्तप्रकार से बतलाई गई उत्पत्ति अनेक अर्थों, वृत्तान्तों तथा शृंगार आदि अनेक रसों से उत्साह-रूप हो जाती है।

जैसे रत्नावली नाटिका के प्रथम अंक में सागरिका का राजा को देखना, अमात्य यौगन्धरायण की योजना के अनुसार घटनाक्रम का आरम्भ होना इत्यादि अनेक वृत्तान्त हैं। समस्त पृथिवी को जीतने की इच्छा वाले अमात्य का वीर रस, वसन्त में वत्सराज उदयन शृंगार रस, नागरिकों के प्रमोद को देखकर अद्भुत रस और उद्यान में पुनः वत्सराज का शृंगार रस है। कन्दर्प-पूजा (कामदेव की पूजा) में सागरिका का राजा को देखना 'बीज' है जो कि सागरिका के संगमरूपी उत्साह से युक्त है। इस प्रकार यहाँ मुख सन्धि है।

मुखसन्धि के अंग–

उपक्षेपः परिकरः परिन्यासो विलोभनम्।।81।।

युक्तिः प्राप्तिः समाधानं विधानं परिभावना।

उद्भेदः करणं भेद एतान्यङ्गानि वै मुखे।।82।।

मुखसन्धि के बारह अंग होते हैं – 1. उपक्षेप, 2. परिकर, 3. परिन्यास, 4. विलोभन, 5. युक्ति, 6. प्राप्ति, 7. समाधान, 8. विधान, 9. परिभावना, 10. उद्भेद, 11. करण, 12. भेद।

1. उपक्षेप–

काव्यार्थस्य समुत्पत्तिरुपक्षेप इति स्मृतः।

काव्यार्थ इतिवृत्तलक्षणप्रस्तुताभिधेयः। यथा वेण्याम्– भीमः –

लाक्षागृहानलविषान्नसभाप्रवेशैः प्राणेषु वित्तनिचयेषु च नः प्रहृत्य।

आकृष्य पाण्डववधूपरिधानकेशान् स्वस्था भवन्ति मयि जीवति धार्तराष्ट्राः।।

काव्यार्थ सम्बन्धित इतिवृत्त (कथावस्तु) के उद्भावन (उत्पत्ति) को उपक्षेप कहते हैं अर्थात् इतिहासरूप काव्य के वर्णनीय अर्थ का संक्षेप से निर्देश करना उपक्षेप कहलाता है, जैसे कि वेणीसंहार में भीमसेन की उक्ति–

लाक्षागृह में आग, विषैला भोजन और द्यूतक्रीडार्थ सभाप्रवेश के द्वारा हमारे धन एवं प्राणों पर प्रहार करके तथा हम पाण्डवों की वधू द्रौपदी के वस्त्रों और केशों को खींचकर क्या वे धृष्टराष्ट्र के पुत्र (कौरव) मेरे जीवित रहते हुए स्वस्थ रहेंगे? कदापि नहीं अर्थात् अवश्य मरेंगे।

इस पद्योक्ति में भीम ने पिछली घटना के साथ भविष्य एवं प्रस्तुत (वर्तमान) दशा को भी सूचित कर दिया है।

2. परिकर–

समुत्पन्नार्थबाहुल्यं ज्ञेयः परिकरः पुनः।।83।।

यथा तत्रैव–

प्रवृद्धं यद्वैरं मम खलु शिशोरेव कुरुभि–

र्न तत्रार्यो हेतुर्न भवति किरीटी न च युवाम्।

जरासन्धस्योरःस्थलमिव विरूढं पुनरपि

क्रुधा भीमः सन्धिं विघटयति यूयं घटयत।।

उत्पन्न अर्थ की बहुलता को परिकर कहते हैं, जैसे– वेणीसंहार नाटक में समझाने बुझाने का प्रयत्न करने वाले सहदेव के प्रति भीमसेन की उक्ति–

बचपन से ही कौरवों के साथ मेरा वैर बढ़ता चला गया। इसमें न तो युधिष्ठिर भ्राता कारण है और न ही अर्जुन तथा न ही तुम दोनों (नकुल और सहदेव) कारण हो। जरासन्ध के वक्षस्थल की भाँति फिर से पनपती इस सन्धि को यह भीम क्रोध से तोड़ता है, आप लोगों को सन्धि करनी है तो भले ही करो।

3. परिन्यास–

तन्निष्पत्तिः परिन्यासः–

यथा तत्रैव–

चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिघातसञ्चूर्णितोरुयुगलस्य सुयोधनस्य।

स्त्यानावनद्धघनशोणितशोणपाणिरुत्तंसयिष्यति कचांस्तव देवि! भीमः।।

उत्पन्न अर्थ की सिद्धि को परिन्यास कहते हैं, जैसे– वेणीसंहारनाटक में भीमसेन की उक्ति–

हे देवि (द्रौपदी)! यह भीम अपनी फड़कती हुई भुजाओं से घुमाई जाती हुई भीषण गदा के प्रहार से दुर्योधन की जंघाओं को रौंदकर निकाले गये प्रगाढ़ रक्त से निश्चल हाथों को रंगता हुआ तुम्हारे केशकलाप को सँवारेगा।

उपक्षेप, परिकर और परिन्यास इनको इस तरह समझना चाहिए –

अत्रोपक्षेपो नामेतिवृत्तलक्षणस्य काव्याभिधेयस्य सङ्क्षेपेणोपक्षेपणमात्रम्। परिकरस्तस्यैव बहुलीकरणम् । परिन्यासस्ततोऽपि निश्चयापत्तिरूपतया परितो हृदये न्यसनम्, इत्येषां भेदः। एतानि चाङ्गानि उक्तेनैव पौर्वापर्येण भवन्ति, अङ्गान्तराणि त्वन्यथापि।

इतिहासरूप काव्य के वर्णनीय (प्रतिपाद्य) अर्थ का सङ्क्षेप से निर्देश करना उपक्षेप कहलाता है और उसी के विस्तार को परिकर कहते हैं तथा इससे भी अधिक निश्चय में उसी बात को हृदय में स्थिर करना परिन्यास कहा जाता है। यही इनका परस्पर क्रमिक भेद है। ये अङ्ग इसी पौर्वापर्य से (क्रम से) होने चाहिएं। अन्य अङ्ग भिन्न क्रम से भी हो सकते हैं।

4. विलोभन–

– गुणाख्यानं विलोभनम्।

यथा तत्रैव– द्रौपदी– नाथ, किं दुष्करं त्वया परिकुपितेन। यथा वा मम चन्द्रकलायां चन्द्रकलावर्णने– सेयम्, 'तारुण्यस्य विलासः'– इत्यादि। यत्तु शाकुन्तलादिषु "ग्रीवाभङ्गाभिरामम्"– इत्यादि मृगादिगुणवर्णनं तद्बीजार्थसम्बन्धभावान्न संध्यङ्गम्। एवमङ्गान्तराणामप्यूह्यम्

गुणों का कथन करने का नाम विलोभन है।

जैसे– वेणीसंहार में द्रौपदी के द्वारा भीमसेन के गुणों (साहसिकता आदि) का कथन –

द्रौपदी– हे नाथ, आप परिकुपित होने पर (गुस्सा आने पर) क्या नहीं कर सकते? अर्थात् आप कुछ भी कर सकते हैं। आदि में अथवा मेरी अपनी कृति 'चन्द्रकला' के चन्द्रकलावर्णन के प्रसंग में– यही चन्द्रकला है, तरुणता की विलास मूर्ति' आदि में, जो गुणवर्णन है वह विलोभन रूप ही है। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि आभिज्ञानशाकुन्तलम् में "ग्रीवाभङ्गाभिरामम्" इत्यादि पद्य में जो मृग का वर्णन किया गया है, वह सन्धि का अंग नहीं है क्योंकि उसका बीजभूत अर्थ से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। इसी प्रकार अन्य अंगों के बारे में भी समझना चाहिए।

5. सम्प्रधारण–

सम्प्रधारणमर्थानां युक्तिः–

अर्थों के निर्धारण करने को युक्ति कहते हैं, जैसे– वेणीसंहार में भीम और सहदेव का संवाद।

6. प्राप्ति–

प्राप्तिः सुखागमः।।84।।

सुख के आगम को प्राप्ति कहते हैं। जैसे– कौरवों का विनाश करने के सन्दर्भ में भीमसेन की क्रोधपूर्ण उक्तियों को सुनकर द्रौपदी के द्वारा सहर्ष वचन बोलना।

7. समाधान–

बीजस्यागमनं यत्तु तत्समाधानमुच्यते।

बीज के आगमन को समाधान कहते हैं। जैसे– वेणीसंहार के प्रारम्भ में भीमसेन के द्वारा जिस बीज (कौरवों के विनाश की प्रतिज्ञा के रूप में) की स्थापना की गई थी, वही यहाँ प्रधान नायक युधिष्ठिर के द्वारा अभिमत हो गया है, अतः यह समाधान है अर्थात् बीज का सम्यक् आधान।

8. विधान–

सुखदुःखकृतो योऽर्थस्तद्विधानमिति स्मृतम्।।85।।

सुख दुःख से मिश्रित अर्थ को विधान कहते हैं, जैसे– बालचरित नाटक में हर्ष और विषाद से आक्रान्त मनोदशा का वर्णन।

9. परिभावना–

कुतूहलोत्तरा वाचः प्रोक्ता तु परिभावना।

कौतूहल युक्त बातों को परिभावना कहते हैं, जैसे– वेणीसंहार में द्रौपदी को संशय था कि युद्ध होगा या नहीं? उसके बाद रण-दुन्दुभि का शब्द सुनकर इस विषय में भीमसेन से पूछना कि यह रण-दुन्दुभि क्यों बजाई जा रही है?

10. उद्भेद–

बीजार्थस्य प्ररोहः स्यादुद्भेदः–

बीजभूत अर्थ के प्ररोह को उद्भेद कहते हैं, जैसे– वेणीसंहार में द्रौपदी भीमसेन से कहती है कि – नाथ ! युद्ध से वापिस आकर मुझे समाश्वस्त करना। तब भीमसेन की उक्ति– देवि ! कौरवों का विध्वंस किये बिना लज्जा से मुँह नीचा करके आने वाले इस वृकोदर (मुझ भीम) को तुम नहीं देखोगी। अर्थात् आज मै अवश्य कौरवों को मिटा दूँगा और वापिस आकर तुम्हें सब तरह से समाश्वस्त करूँगा।

11. करण–

– करणं पुनः।।86।।

प्रकृतार्थसमारम्भः–

प्रकृत कार्य के आरम्भ का नाम करण है, जैसे– वेणीसंहार में भीमसेन की उक्ति– 'देवि! हम कौरवों का विनाश करने के लिए जा रहे हैं'।

12. भेद–

– भेदः संहतभेदनम्।

मिले हुओं के भेदन को भेद कहते हैं, जैसे– वेणीसंहार में भीमसेन की उक्ति– 'इसलिए आज से मैं आप सब से अलग हूँ'।

कोई विद्वान् प्रोत्साहन को भेद मानते हैं।

14.2.2 प्रतिमुख सन्धि एवं उसके अंग

फलप्रधानोपायस्य मुखसन्धिनिवेशिनः।।77।।

लक्ष्यालक्ष्य इवोद्भेदो यत्र प्रतिमुखं च तत्।

यथा– रत्नावल्यां द्वितीयेऽङ्के वत्सराजसागरिकासमागमहेतोरनुरागबीजस्य प्रथमाङ्कोपक्षिप्तस्य सुसंगता-विदूषकाभ्यां ज्ञायमानतया किंचिल्लक्ष्यस्य वासवदत्तया चित्रफलकवृत्तान्तेन किञ्चदुन्नीयमानस्योद्देशरूपः उद्भेदः।

जहाँ मुखसन्धि में निवेशित फलप्रधान उपाय का कुछ लक्ष्य और कुछ अलक्ष्य उद्भेद (विकास) हो उसे प्रतिमुख सन्धि कहते हैं, जैसे – रत्नावली नाटिका में वत्सराज और सागरिका (रत्नावली) के समागम का हेतु, इन दोनों का परस्पर प्रेम, जो प्रथम अंक में सूचित कर दिया है, उसे सुसंगता और विदूषक ने जान लिया, अतः वह (अनुराग) कुछ लक्ष्य हुआ और वासवदत्ता ने चित्र के वृत्तान्त से कुछ कुछ ऊहा की, अतः अलक्ष्यता भी रही। इस प्रकार यहाँ प्रतिमुख सन्धि है।

प्रतिमुखसन्धि के अंग–

अथ प्रतिमुखाङ्गानि–

विलासः परिसर्पश्च विधुतं तापनं तथा।।87।।

नर्म नर्मद्युतिश्चैव तथा प्रगमनं पुनः।

विरोधश्च प्रतिमुखे तथा स्यात्पर्युपासनम्।।88।।

पुष्पं वज्रमुपन्यासो वर्णसंहार इत्यपि।

प्रतिमुख सन्धि के तेरह अंग होते हैं – 1. विलास, 2. परिसर्प, 3. विधुत, 4. तापन, 5. नर्म, 6. नर्मद्युति, 7. प्रगमन, 8. विरोध, 9. पर्युपासन, 10. पुष्प, 11. वज्र, 12. उपन्यास, 13. वर्णसंहार।

1. विलास–

तत्र–

समीहा रतिभोगार्था विलास इति कथ्यते।।89।।

रतिलक्षणस्य भावस्य यो हेतुभूतो भोगो विषयः प्रमदा पुरुषो वा तदर्था समीहा विलासः।

यथा शाकुन्तले–

कामं प्रिया न सुलभा मनस्तु तद्भावदर्शनायासि।

अकृतार्थेऽपि मनसिजे रतिमुभयप्रार्थना कुरुते।।

रति नामक भाव के हेतुभूत भोग (विषयरूप) अर्थात् स्त्री अथवा पुरुष के लिए समीहा = अभिलाषा को विलास कहते हैं, जैसे– अभिज्ञानशाकुन्तलम् में दुष्यन्त की शकुन्तला-विषयक अभिलाषा – भले ही प्रिया (शकुन्तला) सुलभ नहीं है अर्थात् उसका मिलना आसान नहीं है

किन्तु फिर भी मेरा मन उसके भावों को देखने का प्रयास करता रहता है। कामदेव के कृतार्थ न होने पर भी स्त्री पुरुष दोनों की प्रार्थना = अभिलाषा ही रति = प्रेम को जगाती है।

2. परिसर्प–

इष्टनष्टानुसरणं परिसर्पश्च कथ्यते।

यथा शाकुन्तले–

राजा– भवितव्यमत्र तया। तथा हि –

अभ्युन्नता पुरस्तादवगाढा जघनगौरवात्पश्चात्।

द्वारेऽस्य पाण्डुसिकते पदपङ्क्तिर्दृश्यतेऽभिनवा।।

इष्ट वस्तु के खोने पर अथवा वियुक्तहोने पर उसका अन्वेषण करने को परिसर्प कहते हैं, जैसे– अभिज्ञानशाकुन्तलम् में तपोवन में दुष्यन्त का शकुन्तला को ढूँढना (अन्वेषण करना)।

राजा – 'इस लताकुञ्ज में शकुन्तला को होना चाहिए, क्योंकि इसके द्वार पर स्वच्छ बालुका में ऐसे पैरों के चिह्न हैं जो अगले हिस्से में तो उठे हुए हैं, किन्तु पिछले भाग में कुछ नीचे गढ़े हुए हैं। ये उसी के (शकुन्तला के) पैर हैं। नितम्ब के भार के कारण पिछले हिस्से में पैरों के निशान गहरे हैं'।

3. विधुत–

कृतस्यानुनयस्यादौ विधुतं त्वपरिग्रहः।।90।।

यथा तत्रैव– शकुन्तला – अलं वः अन्तःपुरविरहपर्युत्सुकेन राजर्षिणा उपरुद्धेन।

केचित्तु– 'विधृतं स्यादरतिः' इति वदन्ति।

किये हुए अनुनय का परिग्रह न करना विधुत कहलाता है। परिग्रह न करना = स्वीकार न करना, जैसे– अभिज्ञानशाकुन्तलम् में दुष्यन्त को रोकने का अनुनय करने वाली सखियों को शकुन्तला का मना करना।

शकुन्तला – अपने अन्तःपुर (रानियों) के विरह से व्याकुल हो रहे इन राजर्षि (दुष्यन्त) को मत रोको।

कोई विद्वान् अरति (रति न होना) को विधुत कहते हैं।

4. तापन–

उपायादर्शनं यत्तु तापनं नाम तद्भवेत्।

उपाय का न मिल पाना तापन कहलाता है, जैसे– रत्नावली नाटिका में सागरिका को प्रेमप्राप्ति का उपाय न मिल पाना।

5. नर्म–

परिहासवचो नर्म–

परिहास वचन को नर्म कहते हैं, जैसे– रत्नावली नाटिका में सागरिका से सुसंगता का परिहास।

6. नर्मद्युति–

–द्युतिस्तु परिहासजा।।91।।

नर्मद्युतिः –

परिहास से उत्पन्न द्युति को नर्मद्युति कहते हैं, जैसे– रत्नावली नाटिका में सुसंगता के द्वारा किये गये परिहास के कारण सागरिका का लज्जित, सस्मित और संकुचित होकर असूया सहित भृकुटि चढ़ाकर बोलना।

कोई विद्वान् दोष को छिपाने वाले हास्य को नर्मद्युति कहते हैं।

7. प्रगमन–

–प्रगमनं वाक्यं स्यादुत्तरोत्तरम्।

उत्तरोत्तर उत्कृष्ट वाक्य होने को प्रगमन कहते हैं, जैसे– विक्रमोर्वशीयम् में उर्वशी और पुरुरवा का उत्तरोत्तर उत्कृष्ट वाक्य कहना।

8. विरोध–

विरोधो व्यसनप्राप्तिः–

दुःखप्राप्ति (दुःख कष्ट मिलने का नाम) विरोध है, जैसे– चण्डकौशिक नाटक में राजा का कष्टापन्न होना।

9. पर्युपासन–

क्रुद्धस्यानुनयः पुनः ।।92।।

स्यात्पर्युपासनम्–

क्रुद्ध व्यक्ति के प्रति अनुनय को पर्युपासन कहते हैं, जैसे– रत्नावली में कुपित राजा के प्रति विदूषक का अनुनय वचन।

10. पुष्प–

–पुष्पं विशेषवचनं मतम्।

विशेष अनुराग आदि उत्पन्न करने वाले वचन को पुष्प कहते हैं, जैसे– रत्नावली नाटिका में राजा के द्वारा रत्नावली की प्रशंसा में कहे गये प्रणयवचन।

11. वज्र–

प्रत्यक्षनिष्ठुरं वज्रम्–

प्रत्यक्ष निष्ठुर वचन को वज्र कहते हैं, जैसे– रत्नावली नाटिका में राजा से सुसंगता का संवाद।

12. उपन्यास–

–उपन्यासः प्रसादनम्।।93।।

प्रसन्न करने को उपन्यास कहते हैं, जैसे– रत्नावली नाटिका में अपनी प्रियसखी सागरिका को प्रसन्न करने के लिए सुसंगता का राजा से निवेदन करना।

केचित्तु – उपपत्तिकृतो ह्यर्थ उपन्यासः स कीर्तितः। इति वदन्ति।

किन्हीं विद्वानों के मत मे अर्थ को युक्ति युक्त करना उपन्यास कहलाता है।

13. वर्णसंहार–

चातुर्वर्ण्योपगमनं वर्णसंहार इष्यते।

ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि चारों वर्णों के समागम को वर्णसंहार कहते हैं, जैसे– महावीरचरितम् के तीसरे अंक में परशुराम के आने पर ऋषियों की सभा, वीर युधाजित् तथा मन्त्रियों सहित राजा जनक का वर्णन।

आचार्य अभिनवगुप्त के मत में यहाँ वर्ण शब्द का अर्थ पात्र है तथा संहार शब्द का अर्थ मेलन है। वर्णानां मेलनम् = पात्राणां मेलनम्। अर्थात् नाटक के पात्रों का मेलन (मिलना)।

14.2.3 गर्भ सन्धि एवं उसके अंग

फलप्रधानोपायस्य प्रागुद्भिन्नस्य किञ्चन।।78।।

गर्भो यत्र समुद्भेदो ह्रासान्वेषणवान्मुहुः।

फलस्य गर्भीकरणाद् गर्भः। यथा रत्नावल्यांद्वितीयेङ्के– सुसंगता– सखि! अदक्षिणेदानीमसि त्वं या एवं भर्त्रा हस्तेन गृहीतापि कोपं न मुञ्चसि। इत्यादौ समुद्भेदः। पुनर्वासवदत्ताप्रवेशे ह्रासः। तृतीयेङ्के– 'तद्वार्तान्वेषणाय गतः कथं चिरयति वसन्तकः' इत्यन्वेषणम्। विदूषकः– ही ही भोः कौशाम्बीराज्यलाभेनापि न तादृशः प्रियवयस्यस्य परितोषः यादृशी मम सकाशात् प्रियवचनं श्रुत्वा भविष्यति। इत्यादावुद्भेदः। पुनरपि वासवदत्ताप्रत्यभिज्ञानाद् ह्रासः। सागरिकायाः सङ्केतस्थानागमनेऽन्वेषणम्। पुनर्लतापाशकरणे उद्भेदः।

पूर्व सन्धियों में कुछ-कुछ प्रकट हुए फलप्रधान उपाय का जहाँ ह्रास और अन्वेषण से युक्त बार-बार विकास हो वहाँ गर्भ नामक सन्धि होती है। फल को भीतर रखने के कारण इसे गर्भ कहते हैं।

जैसे– रत्नावली नाटिका के द्वितीय अंक में वत्सराज के द्वारा सागरिका का हाथ पकड़ने पर सुसंगता की उक्ति से फलप्रधान उपाय का उद्‌भेद हुआ है। उसी समय वासवदत्ता का प्रवेश होने से ह्रास हुआ है। तृतीय अंक में राजा की उक्ति से उसका अन्वेषण सूचित हुआ है। इस पर विदूषक की उक्ति से फिर से उद्‌भेद होता है। वासवदत्ता फिर भी जान गई, अतः ह्रास हुआ है। सागरिका के संकेत स्थान पर जाने से अन्वेषण और लतापाश बनाने से उसी अनुराग का उद्‌भेद हुआ है इस प्रकार यहाँ गर्भ सन्धि है।

गर्भ सन्धि के अंग –

अभूताहरणं मार्गो रूपोदाहरणे क्रमः।।94।।

सङ्‌ग्रहश्चानुमानं च प्रार्थना क्षिप्तिरेव च।

त्रो(तो)टकाधिबलोद्वेगा गर्भे स्युर्विद्रवस्तथा।।95।।

गर्भ सन्धि के तेरह अंग होते हैं– 1. अभूताहरण, 2. मार्ग, 3. रूप, 4. उदाहरण, 5. क्रम, 6. सङ्‌ग्रह, 7. अनुमान, 8. प्रार्थना, 9. क्षिप्ति, 10. त्रोटक, 11. अधिबल, 12. उद्वेग, 13. विद्रव।

1. अभूताहरण–

तत्र व्याजाश्रयं वाक्यमभूताहरणं मतम्।

कपट युक्तवचन को अभूताहरण कहते हैं, जैसे– वेणीसंहार के अश्वत्थामा अंक में अश्वत्थामा नामक हाथी के मरने पर युधिष्ठिर का कपटवचन – अश्वत्थामा हतो हतः (अश्वत्थामा मारा गया)।

2. मार्ग–

तत्त्वार्थकथनं मार्गः–

यथार्थ बात कहने को मार्ग कहते हैं, जैसे– चण्डकौशिक नाटक में राजा हरिश्चन्द्र का विश्वामित्र के प्रति कहा गया यथार्थ वचन कि मैंने स्त्री, पुत्र को तो बेच दिया है और अब मैं स्वयं को भी चाण्डाल के हाथों बेच कर आपका धन चुका दूँगा।

3. रूप–

–रूपं वाक्यं वितर्कवत्।।96।।

विशेष तर्कयुक्त वचन को रूप कहते हैं, जैसे– रत्नावली नाटिका में राजा की उक्ति कि मन तो अत्यन्त चञ्चल और दुर्लक्ष्य होता है, तो फिर कामदेव के सभी बाणों ने इसे कैसे बींध दिया।

4. उदाहरण–

उदाहरणमुत्कर्षयुक्तं वचनमुच्यते।

उत्कर्षयुक्त वचन को उदाहरण कहते हैं, जैसे– वेणीसंहार में द्रोणाचार्य की मृत्यु के उपरान्त अत्यन्त क्रोधित अश्वत्थामा के वचन।

5. क्रम–

भावतत्त्वोपलब्धिस्तु क्रमः स्यात्–

किसी के भाव का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना क्रम कहलाता है, जैसे– अभिज्ञानशाकुन्तलम् में शकुन्तला के हाव-भावों से राजा का उसके अनुराग के बारे में यथार्थ रूप से जानना।

6. संग्रह–

–संग्रहः पुनः।।97।।

सामदानार्थसंपन्नः।

साम और दान से सम्पन्न अर्थ को संग्रह कहते हैं, जैसे– रत्नावली में प्रशंसा करते हुए राजा का विदूषक को पारितोषिक (इनाम) देना।

7. अनुमान–

–लिङ्गादूहोऽनुमानता।

किसी हेतु से अथवा चिह्नविशेष से कुछ ऊह कर लेना (अन्दाजा लगाना) अनुमान कहलाता है, जैसे– जानकीराघव नाटक में लव और कुश की चाल ढाल तथा पराक्रम को देखकर राम का उनके सूर्यवंशी होने का अनुमान लगाना।

8. प्रार्थना–

रतिहर्षोत्सवानां तु प्रार्थनं प्रार्थना भवेत्।।98।।

रति, हर्ष और उत्सवों के लिए अभ्यर्थना को प्रार्थना कहते हैं, जैसे– रत्नावली नाटिका में सागरिका का प्रगाढ आलिंगन पाने के लिए कामसंतप्त राजा के प्रणयपूर्ण प्रशंसावचन।

विशेष– यह प्रार्थना नामक अंग उन्हीं विद्वानों के मत में माना गया है जो निर्वहण सन्धि में प्रशस्ति नामक अंग को स्वीकार नहीं करते हैं। जो निर्वहण सन्धि में प्रशस्ति नामक अंग को स्वीकार करते हैं वे गर्भ सन्धि के प्रार्थना नामक अंग को नहीं मानते। अन्यथा सन्धियों के कुल पैंसठ अंग हो जायेंगे। जबकि नाट्यशास्त्र के अनुसार पाँचों सन्धियों के कुल मिलाकर चौंसठ अंग ही होने चाहिए।

9. क्षिप्ति–

रहस्यार्थस्य तूद्भेदः क्षिप्तिः स्यात् –

रहस्य के भेद को क्षिप्ति कहते हैं, जैसे– वेणीसंहार के अश्वत्थामा अंक में द्रौपदी के केशग्रह (दुःशासन के द्वारा बाल खींचा जाना) तथा द्रोणाचार्य के केशग्रह (धृष्टद्युम्न के द्वारा बाल

पकड़ कर वध करना) का रहस्य उनके भयानक परिणामों के वर्णन से उद्‌घाटित किया गया है।

10. त्रोटक–

त्रो(तो)टकं पुनः।

संरब्धवाक्–

अधीरतापूर्ण वचन को त्रोटक कहते हैं, जैसे– चण्डकौशिक नाटक में कौशिक (ऋषि विश्वामित्र) के अधीरता से भरे वचन।

11. अधिबल–

–अधिबलमभिसन्धिश्छलेन यः।।99।।

छल से किसी का अनुसन्धान करने या उसे पकड़ लेने को अभिसन्धि कहते हैं, जैसे– रत्नावली नाटिका में चित्रशाला में छलपूर्वक राजा और विदूषक का पकड़ा जाना।

12. उद्वेग–

नृपादिजनिता भीतिरुद्वेगः परिकीर्तितः।

राजा आदि से उत्पन्न भय को उद्वेग कहते हैं, जैसे– वेणीसंहार नाटक में कर्णसंहारक अर्जुन और दुःशासनवक्षविदारक भीमसेन के द्वारा पीछा किये जाने की बात से दुर्योधन के मन में उपजा भय।

13. विद्रव–

शङ्काभयत्रासकृतः सम्भ्रमो विद्रवो मतः।।100।।

शंका, भय और त्रास से उत्पन्न सम्भ्रम (घबराहट) को विद्रव कहते हैं, जैसे– कालान्तक-करालमुख दशानन (रावण) को देखकर वानर-सेना में उत्पन्न सम्भ्रम।

14.2.4 विमर्श सन्धि एवं उसके अंग

यत्र मुख्यफलोपाय उद्‌भिन्नो गर्भतोऽधिकः।।79।।

शापाद्यैः सान्तरायश्च स विमर्श इति स्मृतः।

यथा शाकुन्तले चतुर्थङ्कादौ– अनसूया– प्रियंवदे! यद्यपि गान्धर्वेण विवीन निवृत्तकल्याणा प्रियसखी शकुन्तला, तथापि अनुरूपभर्तृगामिनी संवृत्तेति निवृत्तं मे हृदयम्, तथाप्येतावच्चिन्तनीयं, इत्यत आरभ्य सप्तमाङ्कोपक्षिप्ताच्छकुन्तलाप्रत्यभिज्ञानात्प्रागर्थसञ्चयः शकुन्तलाविस्मरणरूपविघ्नालङ्गितः।

जहाँ (जिस सन्धि में) मुख्य फल का उपाय गर्भ सन्धि की अपेक्षा अधिक उद्‌भिन्न (विकसित) हो, किन्तु शाप आदि के कारण अन्तराय (विघ्न) युक्त हो तो उसे विमर्श सन्धि कहते हैं।

जैसे– अभिज्ञानशाकुन्तल के चतुर्थ अंक में शकुन्तला के गान्धर्वविवाह (प्रेमविवाह) से लेकर सप्तम अंक में शकुन्तला के प्रत्यभिज्ञान होने से पूर्व की कथा शापवशात् विस्मरणरूपी विघ्न से युक्त है। इस प्रकार यहाँ विमर्श सन्धि है।

विमर्श सन्धि के अंग–

अथ विमर्शाङ्गानि–

अपवादोऽथ संफेटो व्यवसायो द्रवो द्युतिः।

शक्तिः प्रसङ्गः खेदश्च प्रतिषेधो विरोधनम्।।101।।

प्ररोचना विमर्शे स्यादादानं छादनं तथा।

विमर्श सन्धि के तेरह अंग होते हैं – 1. अपवाद, 2. संफेट, 3. व्यवसाय, 4. द्रव, 5. द्युति, 6. शक्ति, 7. प्रसंग, 8. खेद, 9. प्रतिषेध, 10. विरोधन, 11. प्ररोचना, 12. आदान, 13. छादन।

1. अपवाद–

दोषप्रख्यापवादः स्यात्–

दोषकथन का नाम अपवाद है, जैसे– वेणीसंहार नाटक में युद्ध क्षेत्र में दुःशासन को ढूँढते हुए युधिष्ठिर का उसके अपराध (द्रौपदी को केशों से पकड़कर घसीटना इत्यादि दोष) का कथन करना।

2. संफेट–

–संफेटो रोषभाषणम्।।102।।

क्रोध भरे वचन को संफेट कहते हैं, जैसे– वेणीसंहार में भीम और दुर्योधन के परस्पर क्रोध से भरे वचन।

3. व्यवसाय–

व्यवसायश्च विज्ञेयः प्रतिज्ञाहेतुसम्भवः।

प्रतिज्ञा और हेतु से सम्भूत अर्थ को व्यवसाय कहते हैं, जैसे– वेणीसंहार नाटक में धृतराष्ट्र के प्रति भीम की उक्ति–

सब कौरवों को चूर-चूर करने वाला, दुःशासन के रुधिर से मत्त होने वाला और दुर्योधन की भी जंघा तोड़ने को तत्पर यह भीम आप (धृतराष्ट्र) को सिर से प्रणाम करता है।

4. द्रव–

द्रवो गुरुव्यतिक्रान्तिः शोकावेगादिसम्भवा।।103।।

शोक, आवेग आदि के कारण गुरुजनों का अतिक्रम करने को द्रव कहते हैं, जैसे– वेणीसंहार में युधिष्ठिर की उक्ति में छोटे-बड़े सभी के प्रति बलराम के द्वारा किये गये उपेक्षाभाव का वर्णन।

5. द्युति–

तर्जनोद्वेजने प्रोक्ता द्युतिः–

तर्जन और उद्वेजन को द्युति कहते हैं, जैसे– वेणीसंहार में जलाशय में छिपे दुर्योधन को तर्जनापूर्वक (फटकार लगाते हुए) भीम के द्वारा ललकारना।

6. शक्ति–

–शक्तिः पुनर्भवेद्।

विरोधस्य प्रशमनम्–

विरोध के शमन को शक्ति कहते हैं, जैसे– वेणीसंहार में युद्ध की समाप्ति पर अपने-अपने भाई बन्धुओं के शव ले जाने तथा सेनाबलों को उपसंहार (विश्राम) करने की घोषणा।

7. प्रसङ्ग–

–प्रसङ्गो गुरुकीर्त्तनम्।।104।।

गुरुओं के वर्णन को प्रसंग कहते है, जैसे– मृच्छकटिक में चारुदत्त के द्वारा वध और यज्ञ आदि के अभ्युदय प्रसंग में किया गया गुरुकीर्तनम् (अपने गुरुजनों का उल्लेख)।

8. खेद–

मनश्चेष्टासमुत्पन्नः श्रमः खेद इति स्मृतः।

मानसिक अथवा शारीरिक व्यापार (क्रियाकलाप) से उत्पन्न श्रम को खेद कहते हैं। मानसिक खेद जैसे– मालतीमाधवम् प्रकरण में विरहव्यथा से ओत-प्रोत अनेक विचारों के संचरण श्रम से माधव का खिन्न होना।

इसी प्रकार शारीरिक (चेष्टाजन्य) श्रम का उदाहरण भी समझ लेना चाहिए।

9. प्रतिषेध–

ईप्सितार्थप्रतीघातः प्रतिषेध इतीष्यते।

अभीष्ट वस्तु के प्रतीघात (विच्छेद) को प्रतिषेध कहते हैं, जैसे– प्रभावती नाटक में प्रद्युम्न से मिलने के लिए आती हुई प्रभावती को असुरराज के द्वारा उठाकर ले जाना।

10. विरोधन–

कार्यात्ययोपगमनं विरोधनमिति स्मृतम्।।

किसी कर्तव्य में विघ्नोपस्थापन विरोधन कहलाता है, जैसे– वेणीसंहार में भीष्म, द्रोण, कर्ण और शल्य जैसे वीरों के स्वर्ग चले जाने पर पाण्डवों की विजय जब लगभग निश्चित हो गई थी, उस समय भीम के वचन से उस विजय का संशय में पड़ना।

11. प्ररोचना–

प्ररोचना तु विज्ञेया संहारार्थप्रदर्शिनी।।106।।

अर्थ का उपसंहार दिखाने को प्ररोचना कहते हैं, जैसे– वेणीसंहार में विजय में कोई सन्देह न रहने पर मंगल रत्नकलश भरे जाने तथा द्रौपदी के केश-गुम्फन के उत्सव की तैयारी।

12. आदान–

कार्यसङ्ग्रह आदानम्–

कार्य के संग्रह को आदान कहते हैं, जैसे– वेणीसंहार में समस्त शत्रुओं का वध करने के बाद शेष बचे क्षत्रियों को निर्भय करना। यहाँ सम्पूर्ण शत्रुओं के वधरूपी कार्य का संग्रह किया गया है।

13. छादन–

–तदाहुश्छादनं पुनः।

कार्यार्थमपमानादेः सहनं खलु यद्भवेत्।।107।।

अपने कार्य के लिए अपमान आदि के सहन करने को छादन कहते हैं, जैसे– वेणीसंहार में अर्जुन की भीम के प्रति उक्ति– 'हे आर्य! क्रोध मत कीजिए। यह दुर्योधन वाणीमात्र से ही हमारा अप्रिय कर सकता है, कर्म से तो कुछ भी अप्रिय नहीं कर सकता। इसके सौ भाई मारे गये हैं। यह दुःखी है। आप इसके प्रलाप (बकवास) से क्यों विचलित होते हैं?'

14.2.5 निर्वहण सन्धि एवं उसके अंग

बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथायथम्।।80।।

एकार्थमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत्।

यथा वेण्याम्, 'कञ्चुकी– (उपसृत्य,सहर्षम्) महाराज! वर्धसे। अयं खलु भीमसेनो दुर्योधनक्षतजारुणीकृतसर्वशरीरोदुलक्ष्यव्यक्तिः' इत्यादिना द्रौपदीकेशसंयमनादिमुखसन्ध्यादिबीजानां निजनिजस्थानोपक्षिप्तानामेकार्थयोजनम्।

यथा वा– शाकुन्तले सप्तमाङ्के शकुन्तलाभिज्ञानादुत्तरोऽर्थराशिः।

जहाँ (जिस सन्धि में) बीज से युक्तमुख आदि सन्धियों में बिखरे हुए अर्थों को एक प्रधान प्रयोजन में यथावत् समन्वित कर दिया जाये उसे निर्वहणसन्धि कहते हैं, जैसे वेणीसंहार के इस प्रसंग में– कंचुकी– (पास जाकर, सहर्ष) महाराज! जय हो।

'दुर्योधन के रक्त से रंजित और इसीलिए पहचान में न आने वाले ये भीमसेन ही हैं' आदि में इस नाटक के प्रधान फल के निष्पादन का जो उपन्यास है वह निर्वहण सन्धि रूप ही रूपकार्थ है। वस्तुतः यही वह रूपकार्थ है जिसकी निष्पत्ति के लिए उन-उन सन्धियों में यथास्थान विन्यस्त द्रौपदीकेशसंयमनादिरूप बीजादिभूत इतिवृत्त उन्मुख होते रहे हैं।

अथवा अभिज्ञानशाकुन्तल के सप्तम अंक में शकुन्तला के अभिज्ञान (परिज्ञान) हो जाने के बाद की सम्पूर्ण कथा में निर्वहण सन्धि है।

निर्वहण सन्धि के अंग–

अथ निर्वहणाङ्गानि।

सन्धिर्विबोधो ग्रथनं निर्णयः परिभाषणम्।

कृतिः प्रसाद आनन्दः समयोऽप्युपगूहनम्।।108।।

भाषणं पूर्ववाक्यञ्च काव्यसंहार एव च।

प्रशस्तिरिति संहारे ज्ञेयान्यङ्गानि नामतः।।109।।

निर्वहण सन्धि के चौदह अंग होते हैं – 1. सन्धि, 2. विबोध, 3. ग्रथन, 4. निर्णय, 5. परिभाषण, 6. कृति, 7. प्रसाद, 8. आनन्द, 9. समय, 10. उपगूहन, 11. भाषण, 12. पूर्ववाक्य, 13. काव्यसंहार, 14. प्रशस्ति।

1. सन्धि–

तत्र–

बीजोपगमनं सन्धिः–

बीजभूत अर्थ के उद्भावित करने को सन्धि कहते हैं। उपगमन = उद्भावन। जैसे– वेणीसंहार नाटक में द्रौपदी के सम्मुख भीम का अपनी पूर्वकृत प्रतिज्ञा (दुर्योधन की जंघा तोड़कर खून से सने हाथों से द्रौपदी के केशों को संवारने की प्रतिज्ञा) को पुनः स्मरण करना।

2. विबोध–

–विबोधः कार्यमार्गणम्।

कार्य के अन्वेषण को विबोध कहते हैं, जैसे– वेणीसंहार नाटक में दुर्योधन के खून से सने हाथों से द्रौपदी के केश संवारने (वेणीसंहार) के लिए भीम का जाने के लिए तत्पर होना।

3. ग्रथन–

उपन्यासस्तु कार्याणां ग्रथनम्–

कार्यों के उपन्यास को ग्रथन कहते हैं, जैसे– वेणीसंहार में द्रौपदी के प्रति भीम की उक्ति–

'देवि! मेरे जीवित रहते तुम दुःशासन के द्वारा खींची गई अपनी यह बिखरी वेणी (चोटी) अपने हाथों से मत बाँधो। ठहरो, मैं स्वयं बाँधूंगा'।

यहाँ कार्य के उपक्षेप से ग्रथन हुआ है।

4. निर्णय–

निर्णयः पुनः।।110।।

अनुभूतार्थकथनम् –

अनुभूत अर्थ के कथन को निर्णय कहते हैं, जैसे– वेणीसंहार में दुर्योधन को मारना, उसके रक्त को शरीर पर मलना, समस्त पृथ्वी और लक्ष्मी महाराज युधिष्ठिर को अर्पित करना, सारे कुरुवंश को रण की अग्नि में भस्म करना तथा दुर्योधन का नाममात्र शेष बचना इत्यादि ये भीम का अनुभूतार्थ कथन है।

5. परिभाषण–

–वदन्ति परिभाषणं।

परिवादकृतं वाक्यम्–

निन्दायुक्त वाक्य को परिभाषण कहते हैं, जैसे– अभिज्ञानशाकुन्तलम् के सप्तम अंक में राजा दुष्यन्त जब पूछता है कि वह देवी (शकुन्तला) किस राजर्षि की पत्नी है? तो तापसी उत्तर देती है कि अपनी धर्मपत्नी का परित्याग करने वाले उसका नाम भी कौन लेगा?

6. कृति–

–लब्धार्थशमनं कृतिः।।111।।

प्राप्त किये हुए अर्थों से शोक आदि का शमन करने को कृति कहते हैं, जैसे– वेणीसंहार में श्रीकृष्ण की उक्ति– 'ये भगवान् व्यास और वाल्मीकि आदि ऋषि अभिषेक जल लेकर पधारे हैं'।

यहाँ राज्याभिषेक मंगल की प्राप्ति से स्थिरता सूचित की गई है।

7. प्रसाद–

शुश्रूषादिः प्रसादः स्यात्–

शुश्रूषा आदि को प्रसाद कहते हैं, जैसे– वेणीसंहार में भीम का द्रौपदी के केश सँवारना।

8. आनन्द–

–आनन्दो वाञ्छितागमः।।

वाञ्छित = अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति को आनन्द कहते हैं, जैसे– वेणीसंहार में द्रौपदी की भीम के प्रति उक्ति– 'नाथ (आप) के प्रसाद से ये सजना सँवरना (जो विस्मृत हो चुका था) फिर से सीख जाऊंगी'।

9. समय–

समयो दुःखनिर्याणम्–

दुःख निकल जाने को समय कहते हैं, जैसे– रत्नावली नाटिका में वासवदत्ता का रत्नावली को आलिंगन करते हुए आश्वासन देना।

10. उपगूहन–

–तद्भवेदुपगूहनम्।।112।।

यत् स्याददद्भुतसम्प्राप्तिः–

अद्भुत वस्तु की प्राप्ति को उपगूहन कहते हैं, जैसे– प्रभावती नाटिका में आकाश से उतरते नारद मुनि को देखकर प्रद्युम्न के द्वारा कैलास पर्वत की कल्पना करते हुए उनका अद्भुत वर्णन करना।

11. भाषण–

–सामदानादि भाषणम्।

साम, दान आदि को भाषण कहते हैं, जैसे– चण्डकौशिक नाटक में धर्मराज द्वारा हरिश्चन्द्र को धर्मलोक में अधिष्ठित करना।

12. पूर्ववाक्य–

पूर्ववाक्यं तु विज्ञेयं यथोक्तार्थोपदर्शनम्।।113।।

पूर्वोक्त अर्थ के उपदर्शन को पूर्ववाक्य कहते हैं, जैसे– वेणीसंहार में भीम का बुद्धिमतिका से पूछना कि भानुमती (दुर्योधन की पत्नी) कहाँ है? भला अब आकर वह पाण्डवों की पत्नी द्रौपदी का पराभव (तिरस्कार) करे।

13. काव्यसंहार–

वरप्रदानसम्प्राप्तिः काव्यसंहार इष्यते।

वरदान की प्राप्ति का नाम काव्यसंहार है। जैसा कि प्रायः सभी नाटकों में होता है।

14. प्रशस्ति–

नृपदेशादिशान्तिस्तु प्रशस्तिरभिधीयते।।114।।

राजा और देश आदि की शान्ति को प्रशस्ति कहते हैं, जैसे– प्रभावती नाटिका में राजाओं की प्रजा के प्रति स्नेहप्रवृत्ति, गुणिजनों की अभ्युन्नति, पृथ्वी की धन-धान्य-समृद्धि तथा नारायण भगवान् के प्रति सबकी भक्ति की कामना करना।

यहाँ अन्त में उपसंहार और प्रशस्ति की स्थिति इसी क्रम से होती है।

विशेष–

कई विद्वानों के मतानुसार यद्यपि ये सभी सन्धियों के आवश्यक अंग हैं तथापि कुछ अंगों की प्रधानता रहती है और कुछ अंगों की यथासम्भव स्थिति स्वीकार की जाती है, जैसे–

1 मुख सन्धि में उपक्षेप, परिकर, परिन्यास, युक्ति, उद्‌भेद और समाधान की प्रधानता होती है।

2 प्रतिमुख सन्धि में परिसर्पण, प्रगमन, वज्र, उपन्यास और पुष्प की प्रधानता होती है।

3 गर्भ में अभूताहरण, मार्ग, त्रोटक, अधिबल और क्षेप की प्रधानता रहती है।

4 विमर्श में अपवाद, शक्ति, व्यवसाय, प्ररोचना और आदान की प्रधानता होती है।

और शेष अंगों की यथासम्भव स्थिति होती है।

चतुःषष्टिविधं ह्येतदङ्गं प्रोक्तं मनीषिभिः।

कुर्यादनियते तस्य सन्धावपि निवेशनम्।।115।।

रसानुगुणतां वीक्ष्य रसस्यैव हि मुख्यता।

इन चौसठ अंगों में से रस के अनुसार अन्य सन्धि के अंगों का अन्यत्र भी निवेश (प्रयोग) हो सकता है, क्योंकि रस की ही प्रधानता मानी गई है। रस ही मुख्य है।

14.3 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने पाँच नाट्यसन्धियों एवं उनके सभी अंगों के बारे में पढ़ा और जाना कि पाँच अर्थप्रकृतियों एवं पाँच अवस्थाओं के योग से क्रमशः पाँच सन्धियाँ बनती हैं – मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और उपसंहृति (निर्वहण)। जहाँ (जिस सन्धि में) अनेक अर्थों एवं अनेक रसों के सूचक बीज की उत्पत्ति प्रारम्भ नामक अवस्था से युक्त होती है, उसे मुख सन्धि कहते हैं। मुख्य होने के कारण इस सन्धि का नाम मुख रखा गया है। बीज नामक अर्थप्रकृति की उक्त प्रकार से बतलाई गई उत्पत्ति अनेक अर्थों, वृत्तान्तों तथा शृंगार आदि अनेक रसों से उत्साह-रूप हो जाती है। मुखसन्धि के बारह अंग हैं – 1. उपक्षेप, 2. परिकर, 3. परिन्यास, 4. विलोभन, 5. युक्ति, 6. प्राप्ति, 7. समाधान, 8. विधान, 9. परिभावना, 10. उद्‌भेद, 11. करण, 12. भेद।

जहाँ मुखसन्धि में निवेशित फलप्रधान उपाय का कुछ लक्ष्य और कुछ अलक्ष्य उद्‌भेद (विकास) हो उसे प्रतिमुख सन्धि कहते हैं। प्रतिमुख सन्धि के तेरह अंग हैं – 1. विलास, 2. परिसर्प, 3. विधुत, 4. तापन, 5. नर्म, 6. नर्मद्युति, 7. प्रगमन, 8. विरोध, 9. पर्युपासन, 10. पुष्प, 11. वज्र, 12. उपन्यास, 13. वर्णसंहार।

पूर्व सन्धियों में कुछ-कुछ प्रकट हुए फलप्रधान उपाय का जहाँ ह्रास और अन्वेषण से युक्त बार-बार विकास हो वहाँ गर्भ नामक सन्धि होती है। फल को भीतर रखने के कारण इसे गर्भ कहते हैं। गर्भ सन्धि के तेरह अंग` हैं – 1. अभूताहरण, 2. मार्ग, 3. रूप, 4. उदाहरण, 5. क्रम, 6. सङ्‌ग्रह, 7. अनुमान, 8. प्रार्थना, 9. क्षिप्ति, 10. त्रोटक, 11. अधिबल, 12. उद्वेग, 13. विद्रव।

जहाँ (जिस सन्धि में) मुख्य फल का उपाय गर्भ सन्धि की अपेक्षा अधिक उद्‌भिन्न (विकसित) हो, किन्तु शाप आदि के कारण अन्तराय (विघ्न) युक्त हो तो उसे विमर्श सन्धि कहते हैं। विमर्श सन्धि के तेरह अंग हैं – 1. अपवाद, 2. संफेट, 3. व्यवसाय, 4. द्रव, 5. द्युति, 6. शक्ति, 7. प्रसंग, 8. खेद, 9. प्रतिषेध, 10. विरोधन, 11. प्ररोचना, 12. आदान, 13. छादन।

जहाँ (जिस सन्धि में) बीज से युक्त मुख आदि सन्धियों में बिखरे हुए अर्थों को एक प्रधान प्रयोजन में यथावत् समन्वित कर दिया जाये उसे निर्वहणसन्धि कहते हैं। निर्वहण सन्धि के चौदह अंग हैं – 1. सन्धि, 2. विबोध, 3. ग्रथन, 4. निर्णय, 5. परिभाषण, 6. कृति, 7. प्रसाद, 8. आनन्द, 9. समय, 10. उपगूहन, 11. भाषण, 12. पूर्ववाक्य, 13. काव्यसंहार, 14. प्रशस्ति।

इन चौसठ अंगों में से रस के अनुसार अन्य सन्धि के अंगों का अन्यत्र भी निवेश (प्रयोग) हो सकता है, क्योंकि रस की ही प्रधानता मानी गई है। रस ही मुख्य है।

14.4 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- साहित्यदर्पणम्,व्याख्याकार आचार्य शेषराजशर्मा रेग्मी, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 2010
- साहित्यदर्पणः, व्याख्याकारः पं. हरेकान्तमिश्रः, चौखम्भा ओरियन्टालिया, दिल्ली,2017
- साहित्यदर्पणः, व्याख्याकार श्रीशालिग्रामशास्त्रि, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली,1986।
- साहित्यदर्पण , व्याख्याकार मिश्रोऽभिराजराजेन्द्रः, अक्षयवट प्रकाशन प्रयागराज।
- साहित्यदर्पणः, (मंजू–संस्कृतव्याख्या– हिन्द्यनुवादोपेतः) व्याख्याकार लोकमणिदाहालादि– चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, स0 2054
- साहित्यदर्पण–विश्वनाथ, (व्याख्याकार)सत्यव्रतसिंह, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1988

14.5 अभ्यास प्रश्न

1. मुखसन्धि का लक्षण लिखिए।
2. मुखसन्धि के कितने अंग हैं? स्पष्ट कीजिए।
3. प्रतिमुख सन्धि का लक्षण उदाहरण सहित बताइये।
4. गर्भसन्धि का स्वरूप सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
5. गर्भसन्धि के अंगों का नाम लिखकर यथेष्ट किसी एक अंग का उदाहरण प्रस्तुत कीजिए।
6. विमर्श सन्धि का लक्षण लिखिए।
7. निर्वहण सन्धि के कितने अंग हैं? स्पष्ट कीजिए।